अबुआ दिशुम, अबुआ राज

झारखंड में पेसा, पंचायती राज संस्थाएं और आदिवासी स्वशासन : मुद्दे, चुनौतियां व संभावनाएं

igsss Indo-Global Social Service Society

संवाद SAMVAD

अबुआ दिशुम, अबुआ राज

झारखंड में पेसा, पंचायती राज संस्थाएं और आदिवासी स्वशासन : मुद्दे, चुनौतियां व संभावनाएं

संवाद

संवाद, 301/ए, उर्मिला इन्क्लेव,
पीस रोड लालपुर, रांची - 834001

प्रकाशन वर्ष : 2015

प्रति : 1000 (एक हजार)

प्रकाशक : संवाद, 301/ए, उर्मिला इन्क्लेव, पीस रोड
लालपुर, रांची - 834001

शब्द संयोजन : राकेश कुमार राउत

E-mail : sarjomsamvad@gmail.com
Web : www.samvad.net

Publication Support : Indo-Global Social Service Society

मुद्रक : अग्रवाल प्रेस, रांची

सीमित प्रसार

प्राचीन काल से ही झारखंड के आदिवासियों का अपना स्व-शासन एवं स्व-राज रहा है। ब्रिटिश औपनिवेशिक काल में उनकी इस व्यवस्था को तोड़ने का प्रयास किया गया। इसके जवाब में आदिवासियों के सशस्त्र संघर्ष की श्रृंखला का इतिहास पढ़ने-सुनने को मिलता है। अंगरेजों ने मजबूर होकर थोड़ी स्वायत्तता और पारंपरिक अधिकारों को मान्यता अवश्य दी, लेकिन यह अत्यंत नाकाफी था। भारत की संविधान सभा में भी इस विषय पर व्यापक बहस-विमर्श हुआ। एक तबका गांधीजी के ग्राम स्वराज का पैरोकार था। वहीं ए. वी. ठक्कर जैसे लोग आदिवासियों को 'अधिकार' देने के बजाय 'ऊपर उठाने' की नीति पर बल दे रहे थे, साथ ही कुछ लोग समावेशीकरण बनाम एकीकरण की नीति की बहस में उलझे थे। वहीं वेरियर एल्विन की सलाह पर प्रधानमंत्री नेहरू ने 'पंचशील' की नीति को प्रस्तुत किया, जिसके तहत आदिवासियों को बिना बाहरी हस्तक्षेप के अपनी संस्कृति व विरासत के तहत आगे का रास्ता तय करना था। हालांकि आजादी बाद के दशकों में देखा गया कि विकास नीतियों ने इन सिद्धांतों की नींव हिला दी, परिणामस्वरूप आदिवासी लगातार वंचित और असंतुष्ट होते गये।

ग्राम स्वराज्य पर गांधी केंद्रित दृष्टिकोण के प्रति संशकित रहनेवाले बी.आर. आंबेडकर ने संविधान में अनुच्छेद 40, अनुच्छेद 243 आदि का प्रावधान किया। इन प्रावधानों में जहां ग्राम पंचायत सबसे नीचे थी वहीं पंचायत समिति, जिला परिषद, राज्य विधानसभा से होते हुए देश की संसद सर्वोच्च पायदान पर थी। देश में इसी विकेंद्रीकृत शासन के ढांचे के अनुरूप ग्राम पंचायतों का गठन गांधी जयंती के दिन 2 अक्तूबर 1959 को किया गया।

लेकिन देश में विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया अत्यंत लचर रही। इसमें कई खामियां रहीं। बाद में 1993 में संविधान के 73वें व 74वें संशोधन के जरिये इसे ज्यादा सशक्त किया गया और एक नयी पंचायती राज संस्थाओं की नींव पड़ी। इस संशोधन से समाज के कमजोर वर्गों विशेषकर महिलाओं की भागीदारी, समय पर चुनाव तथा राज्य चुनाव आयोग और वित्तीय विकेन्द्रीकरण हेतु राज्य वित्त आयोग के गठन को सुनिश्चित किया गया, लेकिन आदिवासियों के लिए इस सामान्य व्यवस्था से अलग विशेष दरजे की व्यवस्था भी की गयी। संविधान निर्माताओं ने आदिवासियों के अधिकारों व मांगों के जवाब में पांचवी व छठी अनुसूची का प्रावधान किया, गौरतलब है कि समूचे झारखंड में लगभग पचास फीसदी औद्योगिक इलाका पांचवी अनुसूची के दायरे में आता है, इस संदर्भ में एक विशेष कानून 'पेसा' की स्थिति निर्णायक है। आजादी के बाद झारखंड, ओड़िसा, आंध्र प्रदेश जैसे आदिवासी बहुल क्षेत्रों के लिए सामान्य पंचायत व्यवस्था से उपजी निराशा और नित-नयी समस्याओं की रोशनी में ही पेसा कानून की जमीन तैयार हुई। भूरिया कमिटि की रिपोर्ट तथा पेसा कानून के बाद झारखंड में कई विवाद उत्पन्न हुए। झारखंड निर्माण के बाद बने पंचायती राज अधिनियम-2001 राज्य भर में विवाद व विचार-विमर्श का केंद्र रहा है। आखिरकार वर्ष 2010 में सुप्रीम कोर्ट के हस्तक्षेप के बाद 'पेसा' के आरक्षण प्रावधनों के अनुरूप पंचायत चुनाव संपन्न हुए हैं।

पेसा आदिवासियों के सामुदायिक जीवन प्रणाली के महत्व को पंचायती तथा स्थानीय स्वशासन व्यवस्था के रूप में रेखांकित करता है। लेकिन अनुसूचित क्षेत्रों में पेसा कानून से जुड़े कुछ ऐसे मुद्दे हैं, जिनसे सामान्य प्रशासन के साथ पेचीदगियां उभरती हैं, गैरआदिवासियों के साथ विवाद के स्रोत पैदा हुए हैं। झारखंड के अपने पंचायत अधिनियम और इस अनुरूप हाल में संपन्न पंचायत चुनाव में पेसा कानून का क्रियान्वयन व प्रभाव क्या रहा है, यह भी कइयों के लिए अध्ययन का मूल विषय है। आदिवासी क्षेत्रों में

वित्तीय कोष की उपलब्धता, पारंपरिक सामुदायिक चयन प्रणाली, मुख्यधारा के प्रशासनकि ढांचे तथा अधिसूचित क्षेत्रों की पारंपरिक स्वशासन या ग्राम सभा प्रणाली में सामंजस्य व विभेद के पहलू, मनरेगा सहित शिक्षा व स्वास्थ्य से जुड़े नवीन सरकारी संस्थाओं के साथ उनका तालमेल आदि कई ऐसे मुद्दे हैं, जिनकी स्पष्ट व्याख्या व समझ होनी जरूरी है।

झारखंड में आदिवासी समूहों का वर्गीकरण

आादिम जनजातियां/पीटीजी	असुर, बिरहोर, बिरजिया, माल पहाड़िया–सौरिया पहाड़िया कोरवा, संवर, हिल खड़िया परहिया
गैरआदिम आदिवासी/नन पीटीजी	–
खेतिहर के रूप में बसे आदिवासी	बेदिया, बिंझिया, बाथुड़ी चेरो, गोंड, हो, करमाली, खड़िया, खरवार, खोंड, किसान, मुंडा, उरांव, संथाल, भूमिज, कोरा
कारीगर/शिल्पकार आदिवासी	टोकरी बनानेवाले महली, लोहे से संबंधित लोहरा व करमाली, बुनकर के रूप में चिक बड़ाइक, ढोल पीटनेवाले–संदेशवाहक व देखरेख करनेवाले गोराइत
ओझा–गुणी, झाड़–फूंक करनेवाले	बैगा

ऐतिहासिक विकास

इतिहास बताता है कि झारखंड के आदिवासियों में बाहरी तत्वों की ओर से 'दमन की संस्कृति' और इसके जबाव में आदिवासियों के भीतर से 'प्रतिरोध की संस्कृति' विद्यमान रही है। प्रतिरोध आंदोलनों की वजह आदिवासियों की

उनकी जमीन से जबरन बेदखली रही है, जिसके लिए सूदखोर महाजन, लालची व्यापारी, शहरी इलाकों के नये प्रवासी और सरकारी व गैरसरकारी विशाल परियोजनाओं से उपजा दर्दनाक विस्थापन जैसे कारक दोषी हैं। ब्रिटिश काल में 1796 में राजमहल का पहाड़िया विद्रोह, 1831 का कोल विद्रोह, 1803 व 1862 में कोया विद्रोह विदेशी शासन की उपनिवेश आधारित यातनापरक नीति के कारण हुए। इसके परिणामस्वरूप नन रेगुलेशन एरिया जैसे सीमित प्रशासनिक उपायों व सुधारों की श्रृंखला में 1833 के 13वें रेगुलेशन से साउथ वेस्ट फ्रंटियर एजेंसी की स्थापना से लेकर 1874, 1877, 1881, 1895 में शेड्यूल डिसि्ट्रक्ट एक्ट के विविध रूपों के जरिये संथालपरगना, चुटिया नागपुर, हजारीबाग, लोहरदगा, मानभूम, सिंहभूम, धालभूम, कोल्हान, पोड़ाहाट आदि इलाके नये ढंग से सीमांकित किये गये। आज संविधान की पांचवी अनुसूची के दायरे में मुख्यतः ये ही इलाके आते हैं। ब्रिटिश काल के इन उपायों से एक महत्वपूर्ण बात का संकेत मिलता है कि भारत के शेष इलाकों में राजनीतिक सुधारों के उपाय इन इलाकों के लिए बहुत मायने नहीं रखते, क्योंकि इनकी अपनी ऐतिहासिक विशिष्टता है। 1899 और 1935 के ब्रिटिश भारत सरकार अधिनियम में ये इलाके पूरी तरह तथा कुछ आंशिक रूप से बाहर रखे गये। आजाद भारत की संविधान सभा की उपसमिति ने इन्हें अनुसूचित क्षेत्र के रूप में चिन्हित किया। इसके तहत पूरी तरह बाहर रखे गये इलाके छठी अनसूची में दर्ज किये गये और आंशिक रूप से बाहर रखे गये इलाके पांचवी अनुसूची में। इस तरह देखा जा सकता है कि ओड़िसा, गुजरात, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र सहित झारखंड के इलाके के आदिवासियों को अपनी अस्मिता की लंबी लड़ाई के बाद ही संवैधानिक प्रावधानों में पांचवी अनुसूची के रूप में विशिष्ट दरजा हासिल हुआ है।

पांचवी अनुसूची के कुछ खास प्रावधान

1. अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन के लिए राज्यपाल की रिपोर्ट राष्ट्रपति को भेजी जानी चाहिए।

2. आदिवासियों के हितों की रक्षा के लिए आदिवासी परामर्शदातृ परिषद/टीएसी नियुक्त होगी।
3. अनुसूचित क्षेत्रों से संबंधित राज्य व संसद के कानूनों के विनियमन (रेगुलेशन) की शक्ति राज्यपाल के पास है।
4. अनुसूचित क्षेत्रों में शांति व शासन के लिए ऐसे रेगुलेशन के तहत राज्य को कई विशेषाधिकार प्राप्त हैं।
5. राष्ट्रपति के पास किसी इलाके को अनुसूचित घोषित करने की विशिष्ट शक्ति है।

पांचवी अनुसूची के भाग 'ख' के अनुसार आदिवासी सलाहकार परिषद का गठन राष्ट्रपति की अनुमति व राज्यपाल की अनुशंसा के बाद होता है। टीएसी में अधिकतम 20 सदस्यों में कम से कम तीन चौथाई आदिवासियों का रहना अनिवार्य है। परिषद का काम आदिवासी कल्याण व उनकी प्रगति के उपाय सुझाना है, जिसे राज्य सरकार राज्यपाल के पास संस्तुति के लिए भेजती है। राज्यपाल को अनुसूची के अनुसार, परिषद से संबंधित महत्वपूर्ण शक्तियों के अलावा क्षेत्र निर्धारण, कानूनों के नियमन, बदलाव, समाप्ति, सामान्य कामकाज की देखरेख आदि जैसे कई ऐसे अधिकार प्राप्त हैं, जो राज्य विधायिका को हासिल नहीं हैं।

पेसा कानून–1996 का आगमन

आंध्र प्रदेश के एक गैर सरकारी संगठन 'समता' से संबंधित याचिका निष्पादन के फैसले के तहत 73वें एवं 74वें संशोधन के बाद आंध्रप्रदेश, पूर्ववर्त्ती बिहार में कई मामले उच्च न्यायालय में दायर हुए जिसमें इस प्रावधान को अनुसूचित थाने में स्वतः लागू करने का विरोध किया गया। अंततः इन क्षेत्रों के लिए भूरिया कमिटि का गठन किया गया जिसकी अनुशंसा के उपरांत पेसा (1996) अधिनियम संसद ने पारित किया। सुप्रीम कोर्ट द्वारा 1996 में पेसा यानी 'पंचायत विस्तार–अनुसूचित क्षेत्र–अधिनियम' अस्तित्व में आया। इसके तहत आदिवासी समूहों को स्वशासन, प्राकृतिक संसाधनों पर मालिकाना

हक, राजनीतिक सीमाओं का स्वयं निर्धारण, ग्राम सभा व पंचायत स्थापना, कानून–व्यवस्था लागू करना, बाहरी शोषक तत्वों से बचाव आदि कई विशिष्ट व पारंपरिक अधिकार प्राप्त हुए हैं जैसे:–

उपबंध 94 : संविधान के 73वें संशोधन के अनुसार अनुसूचित क्षेत्र की हरेक ग्राम सभा को अपने हितों की रक्षा करने, अवैध तरीके से जमीन की बेदखली आदि से बचाव का अधिकार होगा।

उपबंध 110 : अनुसूचित क्षेत्र के खनिजों का उत्खनन आदिवासी खुद या सहकारी समितियां बना कर करेंगे, राज्य सरकार यथासंभव मदद देगी।

उपबंध 112 : पूर्ण प्रतिरोध की अनुपस्थिति में कोर्ट परियोजना खर्च के रूप में संबंधित पक्ष के लिए दायित्व व कर्तव्य निर्धारित करेगा।

उपबंध 114 : कम से कम 20 फीसदी सकल लाभ आदिवासियों के विकास व पर्यावरण रक्षा हेतु एक अलग स्थायी कोष में जमा होगा।

उपबंध 115 : अनुसूचित क्षेत्र में गैर आदिवासियों, कॉरपोरेट कंपिनयों को लीज रूप में भूमि हस्तांतरण पर प्रतिबंध है।

उपबंध 116 : आदिवासी जमीन लीज या पट्टे का नवीकरण, या ऐसा ही कोई उपाय भी प्रतिबंधित है।

उपबंध 117 : माइनिंग लीज यानी खनन पट्टा गैर आदिवासियों, किसी कंपनी या साझेदारी फर्म को देना असंवैधानिक है। ऐसा होने पर वह अवैध व रद्द माना जायेगा। केवल राज्य सरकार के मिनरल डेवलपमेंट कॉरपोरेशन को कुछ रियायत हासिल है।

उपबंध 129 : कुछ राज्यों में अनुसूचित क्षेत्रों में पूर्ण निषेध की अनुपस्थिति में सचिवालय समिति व राज्य कैबिनेट उपसमिति गठित होंगी और निर्णय लिये जायेंगे।

उपबंध 131 : सभी मुख्यमंत्रियों, संबंधित विभाग के मंत्रियों, केंद्रीय मंत्रियों व प्रधानमंत्री का सम्मेलन होना चाहिए, ताकि आदिवासी इलाकों के लिए न्यायसंगत नीति बने और तदनुरूप निर्णय लिये जायें।

झारखंड में अनुसूचित क्षेत्र

झारखंड व छत्तीसगढ़ के एक अलग राज्य के रूप में आने के बाद 2003 में झारखंड में एक आदेश आया, जिसने 1977 के आदेश की जगह ली। 2003 में चौदह जिले के 112 प्रखंडों को अनुसूचित क्षेत्र माना गया। अनुसूचित क्षेत्रों का दो वर्गों में जिलावार निर्धारण हुआ। भाग 'क' में सम्पूर्ण प्रखंडों वाले जिले थे और भाग 'ख' में जिले के एकाध अनुसूचित क्षेत्र वाले प्रखंड।

भाग 'क' के अंतगर्त आनेवाले जिले

जिला	प्रखंडों का विवरण
रांची	बुंडू, तमाड़, बुढ़मू, मांडर, चान्हो, बेड़ो, लापुंग, रातू, कांके, ओरमांझी, अनगड़ा, सिल्ली, सोनाहातु, अड़की, मुरहू, कर्रा, तोरपा, रनियां।
लोहरदगा	किस्को, कुड्डू, लोहरदगा, नामहेंरा, सेन्हा।
गुमला	बिशुनपुर, घाघरा, चैनपुर, डुमरी, रायडीह, गुमला, सिसई, भरनो, कामडारा, बसिया, पालकोट।
सिमडेगा	सिमडेगा, कोलेबिरा, बानो, जलडेगा, ठेठइटांगर, कुरडेग, बोलबा।
लातेहार	बरवाडीह, मनिका, बालूमाथ, चंदवा, गारू, महुआडांड।
पश्चिमी सिंहभूम	बंदगांव, चक्रधरपुर, सोनुआ, गोइलकेरा, मनोहरपुर, कुमारडुंगी, मंझरी, तांतनगर, झींकपानी, टोंटो, खूंटपानी, चाईबासा।
सराइकेला–खरसांवा	गोविंदपुर, राजनगर, आदित्यपुर–गम्हरिया, सराइकेला, खरसांवा, कुचाई, चांडिल, इचागढ़, नीमडीह।

पूर्वी सिंहभूम	गोलमुरी–जुगसलाई, पटमदा, पोटका, डुमरिया, मुसाबनी, घाटशिला, धालभूमगढ़ चाकुलिया, बहरागोड़ा।
दुमका	सरइयाहाट, जरमुंडी, जामा, रामगढ़, गोपीकांदर, काठीकुंड, दुमका, शिकारीपाड़ी रानेश्वर, मसलिया।
जामताड़ा	कुंडहीत, नाला, जामताड़ा, नारायणपुर।
साहेबगंज	साहेबगंज, बोरियो, तालझारी, राजमहल, बरहरवा, पथना, बरहेट।
पाकुड़	लिट्टिपाड़ा, आमड़ापाड़ा, हिरणपुर, पाकुड़, महेशपुर, पाकुड़िया।

भाग 'ख' में - गढ़वा का भंडरिया प्रखंड, गोड्डा के सुंदरपहाड़ी व बाओरीजोर प्रखंड आते हैं।

वैसे तो अनुसूचित क्षेत्रों में आदिवासी बहुसंख्यक होते हैं, लेकिन कई प्रखंडों के इलाकों में सदानों खासकर कुड़मी महतो की बहुलता से पंचायत चुनाव में काफी विवाद हुआ। 2001 की जनगणना के अनुसार झारखंड के 32617 गांवों में से 17353 अनुसूचित गांव हैं। अनुसूचित क्षेत्रों के 3065 गांव में कोई आदिवासी आबादी नहीं है,

झारखंड राज्य में आदिवासी आबादी प्रतिशत में

	1 से 10	10 से 20	20 से 30	30 से 40	40 से 50	50 प्लस	आगे	कुल
अनुसूचित क्षेत्र	4.3	4.4	4.1	4.0	4.6	62.3	17.7	100
गैर अनुसूचित क्षेत्र	10.2	4.1	2.7	2.2	2.1	9.3	67.6	100

आदिवासी स्वशासन को औपनिवेशिक शासन व भारतीय संविधान की मान्यता

औपनिवेशिक सत्ता (ब्रिटिश शासन) ने आदिवासियों के दमन के बाद यथास्थिति बनाये रखने के लिए नये भूमि कानून तथा प्रशासनिक उपायों का सहारा लिया। और इस तरह अलग–अलग समयों में विविध व्यवस्थाएं लागू हुईं, जैसे कोल्हान इलाके में विल्किंसन रूल, संतालपरगना में यूले रूल तथा संतालपरगना टेनेंसी एक्ट यानी एसपीटी और छोटानापुर इलाके में छोटानागपुर टेनेंसी एक्ट या सीएनटी आदि। विल्किंसन रूल 1833 के रेगुलेशन के आधार पर तत्कालीन गवर्नर जनरल के फर्स्ट एजेंट कैप्टन थॉमस विल्किंसन के द्वारा तैयार किया गया था। इसके तहत मानकी–मुंडा प्रणाली को महत्व देते हुए दीवानी,फौजदारी और राजस्व से संबंधित प्रशासनिक दायित्वों को पूरा करना था। विदेशी शासन और स्थानीय आबादी के बीच कड़ी बनाने से लेकर विवादों के निबटारे और इन इलाकों में बाहरी लोगों के अंधाधुंध आगमन को रोकने आदि में यह व्यवस्था कारगर मानी गयी। संताल हूल के बाद 1856 में संताल पुलिस रूल्स तैयार हुआ, जिसे यूले रूल भी कहते हैं। पुलिस व्यवस्था के बदले मांझी, परगनैत व देसमांझी को कानून–व्यवस्था का जिम्मा इसके तहत दिया गया। परगना को कई मामलों में अपने इलाके में थानेदार के बराबर दरजा दिया गया। हालांकि आजादी के बाद दामिन–ए–कोह के दुमका व जामताड़ा में नयी पुलिस व्यवस्था 1953–54 में लागू हुई। बाद में हुआ यह कि पारंपरिक पुलिसिया अधिकार आदिवासियों से छिनते गये। सरदार, नायब व मांझी नाममात्र की पदवियां रह गयीं। पहले की तरह इनकी सरकारी नियुक्तियों पर भी ग्रहण लग गया। छोटानागपुर इलाके में सीएनटी कानून मूल रूप से जमीन से संबंधित थे, लेकिन मानकी व मुंडाओं को स्थानीय विवादों के निबटारे सहित, वनोपज की देखरेख और राजस्व उगाही का अधिकार प्राप्त था। संताल परगना टेनेंसी एक्ट में खास गांव व ग्राम प्रधान की स्थापना का प्रावधान था।

नियुक्तियां उपायुक्त के माध्यम से होती थीं। डिप्टी कमिश्नर को जमाबंदी रैयत तथा पारंपरिक अनुवांशिक व्यवस्था के रूप में किसी को प्रधान चुनने का अधिकार होता था, पर हटाने में उसे असाधारण शक्तियां हासिल थीं। प्रधान को पट्टा मिलने के बाद कबूलियत करनी होती थी, जिसके तहत वह पुलिस ड्यूटी, वनोपज का संग्रह, राजस्व संग्रह आदि करता था। स्वशासी व्यवस्था के तहत दामिन–ए–कोह इलाके में मांझी, चकलादार, देसमांझी आदि पद थे, वहीं गैर दामिन इलाके में परगना की शक्तियां ऐसी नहीं थीं।

ध्यान से देखा जाये तो औपनिवेशिक सत्ता ने ग्राम को सशक्त करने के बजाय अपने मातहत आदिवासी अधिकारियों की एक नयी श्रृंखला बनायी, जो उनके हितों की रक्षा कर सकें। उन्होंने स्वशासन व जमीन से बेदखली आदि मामलों में कुछ रियायतें जरूर दी, पर उनका मकसद लोगों का भला न कर उनको साम्राज्य के अधीन लाकर अपना फायदा उठाना था।

झारखंड में पांचवी अनुसूची से जुड़ीं प्रतिबद्धताओं में विफलता

झारखंड में संवैधानिक प्रावधानों, पेसा कानून तथा पांचवी अनुसूची के क्रियान्वयन की वस्तुस्थिति क्या है, इसे एक आयोग के नजरिये से समझा जा सकता है।

राज्य अनुसूचित जाति व जनजाति आयोग की टिप्पणी : आदिवासी हितों की रक्षा के लिए संविधान में अनसूचित जाति व जनजाति आयोग के गठन का प्रावधान है। इस संदर्भ में राज्य में 2004 में गठित राज्य अनसूचित जनजाति व अनुसूचित जाति आयोग ने पाया है कि राज्य में पांचवी अनुसूची से संबंधित सभी प्रावधानों का क्रियान्यवन बेहद असंतोषजनक है। राज्यपाल की रिपोर्ट भी बेहद अनियमित और यांत्रिक किस्म की होती है। झारखंड राज्य बनने के बाद पहले पांच सालों में सिर्फ एक बार रिपोर्ट भेजी गयी। अगर रिपोर्ट राष्ट्रपति के पास भेजी भी जाती है, तो अपेक्षित अमल शायद ही होता

है। आदिवासी सलाहकार परिषद की बैठक भी नियमित नहीं होती। आज भी राज्य का एक भाग आनुसूचित क्षेत्र के दायरे से बाहर है। 'समता निर्णय' के अनुसार पेसा कानून के प्रावधानों का कोई खास क्रियान्यवन नहीं हुआ है।

एसएआर कोर्ट के प्रयास नाकाफी : राज्य में टेनेंसी एक्ट के मानकों का उल्लंघन करके जमीन का अवैध हस्तांतरण हुआ है, जिसे रोक पाने में एसएआर कोर्ट सफल नहीं हो पाया है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार 2001–02 में कुल 85777.22 एकड़ भूमि की वापसी के करीब 60464 मुकदमे दायर किये गये, लेकिन केवल 46797.36 एकड़ जमीन से संबंधित 34608 मामले ही स्वीकार किये गये, बाकी ठुकरा दिये गये। करीब 29829 एकड़ जमीन के 21445 मामले ही निष्पादित कर जमीन वापसी की जा सकी। एसएआर कोर्ट भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं हैं। छप्परबंदी जैसे कानूनी प्रावधानों का गलत इस्तेमाल किया गया है। कानूनी पेचीदगियों की वजह से गवाही के स्तर पर, रिकार्ड में हेरफेर, जमीन की मापी में गड़बड़ी अमीन तथा सरकारी अमलों का अभाव, कोर्ट में गैर आदिवासियों की बहुलता आदि के कारण आदिवासियों को अपनी जमीन वापस नहीं मिल सकी है।

पुनर्वास की बदतर स्थिति : ऐतिहासिक रूप से आदिवासियों को जमीन से बेदखल होना पड़ा है, लेकिन बात सरकारी परियोजनाओं से उपजे विस्थापन की हो या निजी उद्यम द्वारा जमीन से बेदखली, पुनर्वास व आदिवासी समूहों की पुनर्स्थापना कभी भी संतोषजनक नहीं रही है। डैम, सरकारी उपक्रम, खदान, विशाल उद्योग, अभयारण्य हों या हाल के एमओयू, सबने 'समता निर्णय' व 'पेसा कानून' का मखौल ही उड़ाया है।

निष्क्रिय टीएसी और अप्रासंगिक करार दिया गया टीएसपी : नियमों के मुताबिक आदिवासी परामर्शदात्री परिषद यानी टीएसी की साल में दो बार बैठक होनी चाहिए, पर 2002–03 और 2003–04 में केवल एक बैठक हुई। पिछले साल भर में बैठक थोड़ा नियमित है, पर इसके प्रयास

नाकाफी हैं। राज्य निर्माण के बाद अलग से कोई आदिवासी उपयोजना यानी टीएसपी नहीं तैयार हुई है, जो कि पहले होती थी। आदिवासियों की गरीबी, भयावह बेरोजगारी आदि के लिए विशेष योजना की जरूरत है।

पेसा कानून बनाम झारखंड पंचायती राज अधिनियम–2001

जैसा कि कहा गया है कि पेसा आजाद भारत का वह कानून है, जो आदिवासियों को विशेष अधिकार व अस्मिता प्रदान करता है। पेसा किसी व्यक्ति के बजाय लोगों की बसाहट या गांव के शासन को बुनियादी बिंदु मानता है। यह शासकीय अर्थों में राजस्व ग्राम भी नहीं है। यह ग्राम सभाओं को सामाजिक विकास योजनाएं खुद चलाने के लिए, लाभुकों का चुनाव करने के लिए, कोष का समुचित उपयोग करने का, आदिवासी इलाकों में भूमि की देखरेख, भूमि बेचने पर प्रतिबंध, वनोपज पर सामुदायिक अधिकार के जरिये पांरपरिक अधिकारों को मान्यता प्रदान करता है। यह जिला प्रशासन व विधायिका के द्वारा ग्राम सभा की अनदेखी करने की प्रवृत्ति पर भी रोक लगाता है, बल्कि कई मौकों पर ग्राम सभा की भूमिका को ज्यादा प्राथमिक व महत्वपूर्ण बताता है।

इन सभी प्रगतिशील प्रावधानों के बावजूद पेसा कानून में चंद खामियां हैं, जैसे : -

1. यह मानता है कि पांचवी अनुसूची में वर्णित आदिवासी समुदाय आजादी पूर्व व बाद के विकास से प्रभावित नहीं हुए हैं और वे एकरूप हैं और व्यापक राजनीतिक प्रक्रियाओं से दूर हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि इन राजनीतिक व सामाजिक प्रक्रियाओं ने आदिवासी स्वशासी व्यवस्था पर प्रभाव डाला है, बल्कि यूं कहें कि उन्हें कमजोर कर दिया है।
2. पेसा कानून यह स्पष्ट रेखांकित नहीं करता कि ग्राम सभाओं को, रीति रिवाजों व परंपरा प्रदत्त अधिकारों को अन्य सरकारी विभागों जैसे वन

व सिंचाई विभागों के कानूनों व विनियमों के ऊपर वरीयता प्राप्त है। ये विभाग पेसा कानून व पारंपरिक अधिकारों की धज्जियां उड़ाते रहे हैं। इसी तरह पुलिस भी मानने को तैयार नहीं होती कि विवादों के निपटारे में समुदायों की बड़ी भूमिका है। यह विल्किंसन रूल वाले इलाकों में भी देखा जा सकता है। इसलिए भारतीय दंड संहिता में जरूरी संशोधन होने चाहिए। ग्राम सभाओं को पांरपरिक अधिकारों के तहत ऐसे अधिकार मिलने ही चाहिए। हालांकि हाल में देखा गया है कि ग्राम सभाओं द्वारा दी गयी सजाएं वस्तुगत ढंग से सही न होकर भावनाओं के वशीभूत दी गयी हैं।

3. पेसा कानून इस मामले पर चुप हो जाता है कि जब पारंपरिक अधिकारों के जरिये विवाद निपटारे के दरम्यान किसी व्यक्ति के संविधान प्रदत्त नागरिक अधिकारों का हनन हो जाता है। जैसे बर्हिगोत्र विवाह यानी अपने समुदाय से बाहर शादी, जिसे पारंपरिक व्यवस्था में अपराध माना जाता है। इसी तरह आदिवासी औरतों को संपत्ति पर अधिकार देने का मामला है। अधिकतर आदिवासी समुदाय पितृसत्तात्मक प्रवृत्ति के हैं, इसलिए महिलाओं को ये अधिकार हासिल नहीं हैं। विधवाओं को कुछ अधिकार हैं, पर डायन प्रथा के नाम पर उनका मनमाना शोषण व यातनाओं का दृश्य आये दिन दिखता है।
4. पेसा के तहत इस बारे में उलझन कायम है कि किस हद तक आदिवासी स्वशासन को उल्लंघन आदि के मामले में अधिकार प्राप्त है। जैसे विविध आदिवासी समूहों की बसाहट वाले गांव में सामुदायिक व व्यक्तिगत विवादों के निपटारे में दिक्कतें आती हैं।
5. यह रेखांकित किया जा चुका है कि कानून आंतरिक रूप से विरोधाभासी है, जैसे यह ग्राम पंचायतों को चुनाव के साथ–साथ रीति–रिवाज के अनुरूप पारंपरिक प्रधान चुनने का प्रावधान है। इसे कोर्ट में भी चुनौती दी जाती रही है।

6. अतीत में देखें तो भूमि संबंधी अधिग्रहणों को लेकर पांचवी अनुसूची पर विवाद पैदा हो जाता है। जहां भूरिया कमिटी ग्राम सभा की 'अनिवार्य सहमति' की बात करता है, वहीं पेसा यहां पर 'सलाह–मशविरा' करने का अधिकार देता है। और इसे तो राज्य के कानूनों में जगह तक नहीं मिली है, जैसे ओड़िसा के कानून के अनुसार जिला परिषद यहां महत्वपूर्ण है, जबकि झारखंड का अधिनियम इसकी अनदेखी करता है।

झारखंड में पंचायती राज अधिनियम 2001-पेसा के कई प्रावधानों को खुद में समाहित करता है, पर बहुत से प्रावधानों को नजरअंदाज कर देता है। पेसा के अतिरिक्त झारखंडी कानून को गौर से देखने पर विवाद व अनिश्चय की स्थिति पैदा होती है। जैसे : –

1. कोष के मामले में ग्राम सभा व ग्राम पंचायत के संबंध पर स्पष्टता का अभाव है, अगर फंड ग्राम पंचायत के पास आया तो इसे ग्राम सभाओं के बीच किस आधार पर बांटा जायेगा! इसी तरह किसी गांव में छोटे समुदायों की देखरेख से संबंधित मामले में विवाद पैदा हो सकता है।
2. ग्राम सभा के पारंपरिक प्रधानों तथा ग्राम पंचायत के निर्वाचित मुखिया की भूमिका को लेकर स्पष्टता की कमी है। अतीत में पंचायती राज अधिनियमों ने पांरपरिक स्वशासन के ग्राम प्रधानों की हैसियत को धक्का पहुंचाया है। झारखंड में पंचायत गठन के अभाव के दरम्यान इन पारंपरिक नेताओं को सीमित अधिकार दिये गये, लेकिन अब चुनाव होने के बाद निर्वाचित मुखिया की उपस्थिति से संघर्ष की स्थिति पैदा हो गयी है। आशंका है कि इससे पारंपरिक स्वशासन के प्रधान और कमजोर होंगे और अंततः पेसा का उद्देश्य धूमिल होगा।
3. सीएनटी, एसपीटी एक्ट व विल्किंसन रूल के तहत पारंपरिक प्रधानों को विशेषाधिकार हासिल है, लेकिन झारखंड का अधिनियम इसे नहीं मानता। इसलिए बेहतर समायोजन करने की जरूरत है।

4. माना जाता है कि पारंपरिक स्वशासी व्यवस्था से पंचायती अधिनियम ज्यादा लोकतांत्रिक है, क्योंकि पारंपरिक व्यवस्था वंशानुगत है। साथ ही प्रधानों को ग्राम सभाओं से ज्यादा शक्तियां हासिल हैं, जिसका गलत उपयोग हो सकता है।

पेसा और झारखंड पंचायत राज अधिनियम का तुलनात्मक विश्लेषण

प्रावधान	पेसा-1996, केंद्रीय कानून	झारखंड अधिनियम	क्रियान्वयन की स्थिति
गांव की परिभाषा *4 ख*	एक बसाहट, लोगों का निवास, सुदूर का रहवास, समुदायों की परंपरा व रीतिरिवाज अनुसार निवास	यही परिभाषा	प्रासंगिक अधिसूचना नहीं/ प्रयोग नहीं हुआ/राजस्व ग्राम अब भी इकाई के रूप में मान्य
सामुदायिक रिवाज संसाधन व पारंपरिक तरीके से सुलह *4 घ*	हर ग्राम सभा लोगों के परंपरा, रीति–रिवाज की रक्षा के लिए सक्षम, सांस्कृतिक एकता, सामुदायिक संसाधनों पर विवाद निबटारे में सक्षम हो	यही परिभाषा	प्रासंगिक अधिसूचना नहीं हुई, पुलिस व प्रशासन अधिकतर क्षेत्रों में पारंपरिक विवाद निबटारे के तरीके को नहीं मानता

ग्राम पंचायत योजना सहमति, लाभुकों की सूची और उपयोगिता प्रमाणपत्र देने की सुविधा क्रियान्वयन करना।	हरेक ग्राम सभा *क*–योजना बनायेगी, सामाजिक–आर्थिक कार्यक्रम तैयार करेगी, गांव स्तर पर पंचायत के जरिये *ख*–यही गरीबी उन्मूलन व अन्य कार्यक्रमों के लिए लाभुकों की पहचान व चुनाव के लिए उत्तरदायी होगी।	झारखंड का पंचायत सिर्फ खंड 'क' मानता है।	इस विषय से संबंधित अधिसूचना नहीं हुई, ग्राम सभा को विविध विभागों की सहमति के अनुरूप ही योजनाओं को पूरा किया जा रहा है
प्रखंड व जिला पंचायत का नामांकन	राज्य सरकार अनुसूचित जनजातियों में से तब नामांकित कर सकती है, जब प्रखंड या जिला पंचायत तक प्रतिनिधित्व न पाये	ऐसा प्रावधान नहीं	प्रावधान नहीं/यह छोटे आदिवासी तबकों को जिला व प्रखंड जैसे मध्यम दरजे के पंचायत में प्रतिनिधित्व दिलाता।

भूमि अधिग्रहण पुनर्वास व्यवस्था के पुनर्वास	अनूसूचित क्षेत्र में भू–अधिग्रहण से पहले ग्राम सभा से सहमति जरूरी, विकास परियोजनाओं के लिए भी पूर्व सहमति आवश्यक	कोई प्रावधान नहीं	झारखंड की पुनर्वास नीति में विवरण पर इससे संबंधित कोई कानूनी पहलू नहीं
जलाशयों का प्रबंधन–नियोजन	छोटे जलाशयों की जिम्मेवारी समुचित स्तर पर पंचायतों को दी गयी है	प्रावधान है	इससे संबंधित कानून में संशोधन नहीं
छोटे खनिज के लीज आदि की सिफारिश	अनुसूचित क्षेत्रों में इसके लिए ग्राम सभा की पूर्व सिफारिश अनिवार्य, खनिज के लाइसेंस या लीज के लिए जरूरी	ऐसा प्रावधान नहीं	संबंधित कानून में बदलाव नहीं। हाल के सरकारी आदेश इस प्रावधान का खुला उल्लंघन करते हैं
लघुवनोपज का मालिकाना हक	पंचायतों को मालिकाना हक देना	जंगल के प्रबंधन व रक्षा का अधिकार मालिकाना नहीं	राज्य की विधायिका को अब भी इससे संबंधित संशोधन करना बाकी है

शराब व प्रदूषकों पर नियंत्रण	बिक्री और उपभोग पर नियंत्रण और प्रतिषेध का हक	कानून में जिक्र नहीं	संबंधित कानून में संशोधन की जरूरत
भूमि बिलगाव व पुनर्स्थापना	अनुसूचित क्षेत्रों में भूमि से बेदखली रोकने की शक्ति और आदिवासियों के हक में अवैध बेदखली रोकने व कार्रवाई करने की शक्ति	कोई जिक्र नहीं	सीएनटी व एसपीटी एक्ट में ग्राम सभा व पंचायतों को सशक्त करने से जुड़ा संशोधन निहायत जरूरी है
रूपये के लेन–देन सूदखोरी पर नियंत्रण	आदिवासियों को रूपयों से जुड़े लेन–देन या महाजनी पर नियंत्रण की शक्ति	जिला परिषद को निगरानी रखने का दायित्व	मनी लेंडिंग कानून में संशोधन की जरूरत, महाजनों–सूदखोरों रजिस्ट्रेशन, सीएनटी और सीपीटी एक्ट में संशोधन हो
प्रशासनिक देखरेख/ व्यवस्था	राज्य विधायिका छठी अनुसूची के आलोक में अनुसूचित क्षेत्रों में जिला स्तर ऐसे प्रशासनिक देखरेख की कोशिश करेगी	प्रावधान नहीं है	कोई कार्रवाई नहीं की गयी

पारंपरिक स्वशासन प्रणाली और पारंपरिक पंचायत की संरचना

सुदूर अतीत के समय से ही आदिवासियों में शासन की अपनी प्रणाली विकसित रही है और विविध कालखंडों में अनेक प्रशासनिक बदलावों के बावजूद झारखंड में आदिवासियों की अपनी पारंपरिक स्वशासन प्रणाली कायम रही है। चूंकि आदिवासी अधिकतर स्थानीय समुदाय है, इसलिए उनकी राजनीतिक व सामाजिक शासन भी स्थानिक विशेष है। आदिवासी समाजों में पवित्र जगहों, पवित्र रीति–रिवाजों और सम्मानजनक पुजारियों का खास महत्व रहा है, इसलिए उनका अपना राजनीतिक व सांस्कृतिक स्वशासन तंत्र है। बड़े आदिवासी समुदायों में पदधारियों, उनके सहायकों की एक श्रृंखला है, वहीं बिरहोरों में राजनीतिक व धार्मिक कार्य एकमेव हैं।

इन इलाकों में आदिवासियों की बसाहट या निवास को लेकर स्पष्टता से खास नहीं कहा जा सकता कि वे कब और कैसे आये और बसे आदि। मौखिक व अनुश्रुति परंपरा के मुताबिक 'मुंडा' को एक महान प्रवजन के दौर से गुजरना पड़ा और 'हो' व 'भूमिज' जैसे अन्य समुदाय कोलेरियन मुंडा ट्राइब की ही शाखाएं हैं। उरांव के बारे में कहा जाता है कि वे दक्षिण भारत (कर्नाटक) से यहां बाद में आये। क्षेत्र के इलाकों में बसाहट को सुरक्षित सीमारेखा के रूप में पहचानने के लिए खूंटकट्टी व भुइंहरी जमीन व गांव के रूप में सीमांकन किया गया। बाद में आये दूसरे समुदायों को बराबरी का दरजा नहीं दिया गया और वे इन आदिवासी समुदायों के सहायक व अधीनस्थ के रूप में रहते रहे। मूलवासी या आरंभिक दौर में आये लोगों के पारंपरिक अधिकारों को क्षेत्रभर में मान्यता मिली। इन आदिवासी समुदायों की शासन प्रणाली को लोकतांत्रिक भागीदारी की कसौटी पर बेहतर माना गया। ऐतिहासिक रूप से यह प्रणाली विविध कालखंडों में स्वतः प्राकृतिक रूप से विकसित व परिवर्द्धित होती रही। इस प्रणाली में राजनीतिक मामलों के साथ–साथ आर्थिक व धार्मिक तत्व थे ही,

प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन भी था। हरेक आदिवासी गांव में किसी न किसी तरह की ग्राम सभा थी, जो गांव के दैनंदिन जीवन व गतिविधियों का संचालन करती थी और इसके कर्ताधर्ता के रूप में कुछ प्रमुख लोग भी थे। इस प्रणाली पर आधुनिक युग में विविध झंझावतों के दौरान चोट पहुंची, पर जैसे-तैसे यह व्यवस्था आज भी जारी है।

झारखंड में पारंपरिक पंचायतों को ढीले-ढाले रूप में संयोजित कर पड़हा या परगना के रूप में विकसित किया गया है। उरांवों में पड़हा संगठन बेहद विस्तृत है, जबकि संतालों में परगना पंचायत में कई गांवों को समाहित किया गया है, वहीं हो समुदाय ने मुंडा-मानकी प्रणाली में एक बड़े प्रमुख के अंतर्गत एक खास संख्या में गांवों को जोड़ दिया है। विविध चरणोंवाली यह प्रणाली विविध इलाकों में अब भी प्रभावी है जहां सामूहिकता व समानता इसके प्राणतत्व हैं।

मुंडाओं में पारंपरिक पंचायत प्रणाली : मुंडाओं ने अपनी विस्तृत राजनीतिक संरचना बनायी है, जिसे उन्होंने लिपिबद्ध भी किया है। वंशानुगत आधार पर सबसे बड़ा अपने कुनबे के लोगों का प्रधान होता है, जबकि मुंडारी गांव का प्रधान मुंडा होता है। विविध गांवों के स्तर पर दो संगठन हैं पड़हा व पट्टी, जो राजनीतिक व सामाजिक प्रकृति के हैं। दोनों में भिन्नता भी है। एस.सी. रॉय के अनुसार जहां पड़हा मूल संगठन है, वहीं जे.बी. हॉफमैन का मानना है कि पट्टी मूल है। पट्टी दरअसल मुंडाओं का क्षेत्र आधारित संगठन है। खूंटकट्टी क्षेत्र को सर्कल में विभाजित किया गया है, जिसे पट्टी कहते हैं। पट्टी दस-बारह गांवों का एक समूह है, जिसका मुखिया मानकी होता है। नागवंशी राजाओं के शासनकाल में पट्टी प्रणाली विशेष ढंग से विकसित हुई। पड़हा, कुल या गोत्र के आधार पर पहले है, खूंटकट्टीदार के तहत जमीन के अधिकार के बाद। पट्टी चूंकि क्षेत्र आधारित है, इसलिए इसके दायरे में हर कोई आता है, चाहे वह किसी वंश या गोत्र/किली का हो। जबकि

पड़हा गोत्र का पर्याय जैसा है। पड़हा एक किली के हरेक व्यक्ति के जीवन से जुड़े मामले की देखरेख करता है, भले ही उनका क्षेत्र भिन्न हो। इस तरह वे किली को एक राजनीतिक संगठन के रूप में लेते हैं। किली का संस्थापक प्रधान माना गया और उसे राजा की पद्वी दी गयी, जो वंशानुगत है। पड़हा के ज्यादा विशाल होने पर इसे दो–तीन भागों में विभाजित करने का प्रावधान रहा है। इसे विविध धर्मों के भिन्न समुदाय जैसे लुथेरन मुंडा, कैथोलिक मुंडा, गैर–ईसाई मुंडा के रूप में भी देखा गया है।

पीड़ का काम अपने किली और आदिवासी समुदायों के हितों की रक्षा करना है। पीड़ का जज 'मागो' होता है। एक गोत्र में विवाह करने पर, 'जातिबोरा' यानी मुंडा का गैरमुंडा से विवाह जैसे सामाजिक आचारों के उल्लंघन पर वह सजा का दे सकता है। वैसे तो पड़हा निर्णय लेने में स्वतंत्र है, पर पूरे समुदाय को प्रभावित करनेवाले फैसले में उसे सर्वसम्मति प्राप्त करनी होती है।

'हो' समुदाय में मुंडा-मानकी प्रणाली : 'हो' समुदाय के गांव का मुखिया 'मुंडा' कहलाता है। इसके सहायक के रूप में दिस्कु या डाकुआ यानी संदेशवाहक होता है जो मुंडा की अनुपस्थिति में बैठक करता है। 'हो' समुदाय का अभिभावक माने जानेवाला मुंडा वंशानुगत पद है, पर डाकुआ को हो पंचायत चुनता है। हो इलाकों में 'गैर हो' लोग जैसे गोइलकेरा में महतो को भी मुंडा पद प्राप्त करते देखा गया है। गांवों के एक समूह यानी गांवों के क्षेत्रीय पंचायत 'पीड़' का प्रधान 'मानकी' कहलाता है। एक पीड़ के तहत पांच से लेकर बीस गांव आते हैं, और मुंडा मानकी के अंतगर्त आते हैं। करीब 26 पीड़ कोल्हान में हैं, जिनमें तो सारंडा में 78 गांव हैं और इनमें चार मानकी हैं, वहीं बारा में 131 गांव हैं। 1836 में ब्रिटिश प्रशासन के तहत आनेवाले कोल्हान इलाके में 620 गांव हुआ करते थे। कोल्हान में प्रमुख पदों पर महिलाओं की भी भागीदारी रही है, जैसे अभी सात मुंडा महिलाएं ही हैं। अभी मानकी व मुंडाओं की संख्या निम्नांकित है :

मानकी और मुंडाओं की संख्या

पोड़ाहाट	कुल संख्या	वर्तमान में कार्यरत
मानकी	12	10
ठिकादार	158	116
मुंडा	243	163
कोल्हान	**कुल संख्या**	**वर्तमान में कार्यरत**
मानकी	73	69
मुंडा	904	807

संतालों में मांझी पंचायत प्रणाली : संतालों में मांझी परगनैत व्यवस्था सुपरिभाषित है। संताल कभी भी प्रत्यक्षतः किसी केंद्रीय सत्ता के अंग नहीं रहे। सामाजिक व राजनीतिक नियंत्रण उनके हाथ में ही रहा है। एक संताल गांव का मुखिया मांझी होता है और सब उसका नेतृत्व मानते हैं। पारंपरिक रूप से गांव उसका चुनाव करता था। पुराने संताल परगना डिविजन में डिप्टी कमिश्नर मांझी को चुनता था, पर अब यह वंशानुगत हो गया है। वह गांव के आंतरिक व बाह्य मामलों की देखरेख करता है। गांव के कामकाज में मांझी की सहायता के लिए 'पोरमानिक' व 'जोगमांझी' होते हैं। विशेष परिस्थितियों में मांझी की जगह 'पोरमानिक' लेता है। इसी तरह एक और ग्राम अधिकारी 'गोडेत' सामूहिक उत्सव आदि के अवसर पर गांवों से रसद आदि इकट्ठा करता है। वह मांझी के संदेशवाहक का काम करता है। गांव के सभी वयस्क संताल गांव की परिषद में भागीदारी करते हैं। संताल गांवों के क्षेत्रीय पंचायत को परगना पंचायत कहते हैं, जिसकी अध्यक्षता परगनैत या परगना करता है। बीस–पचीस गांवों के प्रमुख परगनैत के सहायक के रूप में देसमांझी और उसके संदेशवाहक के रूप में 'चकलादार' होता है।

उरांव समुदाय में पड़हा प्रणाली : उरांवों के पड़हा के तहत आनेवाले गांवों की संख्या तय नहीं है, पर आम तौर पर पांच से 22 गांव तक आते हैं। गांव में दो तरह के प्रधान होते हैं, एक धार्मिक कार्य करनेवाले पवित्र प्रमुख यानी पाहन, वहीं दूसरा सामान्य कामकाज की देखरेख करनेवाला प्रधान। सामान्य स्वशासी काम देखनेवाला यह व्यक्ति मुखिया के रूप में 'महतो' कहलाता है, जो अखरा (गांव का सांस्कृतिक स्थल) में बैठक करता है। महतो किसी प्रमुख वंश या किली से संबंधित होता है और वह महतो खूंट से संबंधित होता है। उरांव गांवों का एक क्षेत्रीय समूह पड़हा के रूप में स्थापित हो गया है, जिसके प्रधान को 'पड़हा राजा' कहते हैं।

भूमिज समुदाय में गांवनला : भूमिज आदिवासी समुदाय की संरचना मुंडाओं की भांति है, जिसे स्थानीय भाषा में गांवनला प्रणाली कहते हैं। गांव प्रधान 'पाहन' या 'नयना' कहलाता है, जबकि गांवों का एक क्षेत्रीय समूह 'सरदार' नामक मुखिया के अधीन होता है। इस क्षेत्र को पांच मुंडा या चारडिहा भी कहते हैं। इससे बड़े स्तर के क्षेत्रीय पंचायत को पीड़ कहते हैं, जिसका अध्यक्ष दिक् सरदार होता है। इसकी बैठक 'पीड़ मोकाम' या पीड़ कहे जानेवाले स्थान पर होती है। दिक सरदार, निर्वाचित सदस्य, निर्वाचित निर्णायक सदस्य और साधारण लोग सभी व्यवस्था में भागीदार होते हैं। भूमिजों की प्रणाली में व्यक्तियों का चुनाव आपसी मत–मतांतर से होता है, जिनको चुनने का कोई समय बंधन नहीं है। भूमिजों में हिंदू तत्वों का समावेश हो चुका है और ब्राह्मणों की भूमिका बेहद महत्वपूर्ण हो चली है। पारंपरिक 'दिउरी' अब हाशिए पर हैं। उसके मुकाबले पुजारी यानी 'नाया' महत्पूर्ण है। हर गांव में संदेशवाहक के रूप में 'डाकुआ' कार्यरत होता है।

पहाड़िया समुदाय में प्रधानी प्रणाली : पहाड़िया तीन समूहों जैसे माल पहाड़िया सौरिया पहाड़ी तथा कुमारभाग पहाड़िया में बंटे हुए हैं। इनमें से झारखंड ने जनजाति सूची में दो समूहों को ही स्थान दिया है। ये समुदाय अपने

को एक–दूसरे से ऊंचा मानते हैं और इनमें रोटी–बेटी से लेकर छुआछूत आदि तक देखा जा सकता है। मुगलों के समय से ये लुटेरे के रूप में जाने जाते थे। दामिन–ए–कोह में आनेवाले पहाड़िया समुदाय में मांझी या प्रधान ग्राम परिषद का मुखिया होता है, जिसकी सहायता के लिए गोडेत व पोरमानिक आदि अधिकारी होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन्होंने संतालों की प्रणाली अपना ली है। हालांकि इनके क्षेत्रीय पंचायतों के मुखिया को कहीं 'सरदार' तो कहीं 'जमींदार' कहते हैं। सरदार व मांझी आदि गांव के वैधानिक कार्यों से लेकर राजस्व संग्रह, क्षेत्र की देखरेख आदि कार्य संपन्न करते हैं।

बिरहोरों की व्यवस्था : बिरहोर की पहचान घुमंतू आदिवासी समूह के रूप में की जाती रही है। जहां–तहां घूमनेवाले बिरहोर 'उथलुस' या 'भुलिया' कहलाते हैं जबकि खेती आदि किसी आजीविका के जरिये एक जगह टिक कर रहनेवाले बिरहोर 'जाघी' या 'थानीस' कहलाते हैं। बिरहोरों की बसाहट को 'टांडा' कहते हैं, जिसमें पारंपरिक रूप से दर्जन या इससे ज्यादा पत्तों–डालियों या फूस आदि से बनी खास झोपड़ियां यानी कुंबा होते हैं। हर टांडा का प्रधान 'नाया' कहलाता है, जो गांव का मुखिया व धार्मिक प्रधान होता है।

पारंपरिक स्वशासी नेताओं की भूमिका : इनके प्रमुख कार्यभार व दायित्व कुछ इस प्रकार हैं– पारिवारिक व ग्रामीण विवादों का निबटारा करना। आपराधिक मामलों की सुनवाई। यौन शोषण तथा यौन उच्छृंखलता पर दण्ड। भूमि व संपत्ति मामले में न्याय करना। उत्सवों व रीति रिवाजों की देखरेख। गांव–समुदाय में शांति, सौहाद्र व एकता कायम रखना। गांवों के विकास के लिए कार्य करना।

गांवों में पारंपरिक स्वशासन व्यवस्था के लाभ : इस व्यवस्था तक लोगों की पहुंच आसान है। इसमें कम खर्च व कम समय लगता है। ग्राम सभा में निर्णय सर्वसम्मति से लिये जा सकते हैं। यहां रिश्वत व घूस से लेकर वकीलों की जरूरत नहीं पड़ती है। ग्राम सभा के कार्यों में बाहरी हस्तक्षेप की गुंजाइश नहीं है। सजा या दण्ड का मूल मकसद नैतिक मार्गदर्शन व सामाजिक दबाव के जरिये स्थिति या व्यक्ति विशेष में सुधार लाना होता है।

गांवों में पारंपरिक स्वशासन व्यवस्था में कमियां

इसमें महिलाओं की भागीदारी नहीं के बराबर है और दूसरे समुदायों को भाग लेने का मौका नहीं मिलता। यह केवल क्षेत्र में प्रमुखता प्राप्त आदिवासी समूह के पक्ष में ही प्रभावी है। पारंपरिक कानून निर्णय के केंद्र बिंदु हैं, जिसकी प्रकृति धार्मिक ज्यादा है, तार्किक या वैज्ञानिक नहीं। डायन प्रथा, ओझागीरी जैसे अंधविश्वास, व्यक्ति विशेष के प्रति पूर्वाग्रह, आदि भावनाओं में बहकर कई बार निर्णय लिये जाते हैं या सजा या दण्ड दिये जाते हैं। दण्ड व सजा कई बार अंतर-सामुदायिक विवाहों में भावावेश या संघर्ष के कारण दिये जाते हैं।

पारंपरिक प्रणाली को कमजोर करनेवाले प्रमुख उत्तरदायी कारक

1. पारंपरिक प्रणाली को, नयी पंचायती प्रणाली से काफी चोट पहुंच रही है क्योंकि नयी प्रणाली अंतरग्राम प्रकृति की है, जो पारंपरिक प्रणाली के समानांतर एक ढांचा बना कर काम करती है। इसके पास ज्यादा भौतिक ताकत है, जिससे पारंपरिक व्यवस्था कमतर हुई है।
2. गांवों या इससे सटे इलाकों में शहरीकरण व औद्योगिकीकरण ने विस्थापन व प्रवजन को बढ़ावा दिया है, जिससे नये किस्म की समस्याएं आयी हैं।
3. आधुनिक शिक्षा ने गांवों के लोगों का संपर्क अपने मूल क्षेत्र से काट दिया है, ज्यादा सुसंस्कृत व अभिजात्य बनने के चक्कर में ग्रामीण युवा अपनी माटी, गांव व संस्कृति को हेय दृष्टि से देखने लगे हैं।
4. सरकारी प्रशासन का हस्तक्षेप, आधुनिक नेतृत्व और बाहरी लोगों की बसाहट से स्थितियां पहले की तरह पूर्ण स्वायत्त नहीं रह गयी हैं।

पारंपरिक व्यवस्था में विवादों का निपटारा : यह प्रक्रिया प्रभावित पक्ष द्वारा गांव के प्रधान या मुखिया को शिकायत बता कर आरंभ होती है। मामले का संज्ञान लेते हुए मुखिया अपने सहायक को ग्रामसभा या परिषद के

अन्य सदस्यों तथा लोगों को तथा आरोपी पक्ष को अखड़ा या ऐसी ही किसी जगह बैठक के लिए निर्देश देता है। बैठक में सभी बुजुर्ग व सम्मानित जनों के बीच शिकायत करनेवाले पक्ष व आरोपी पक्ष के बीच सुनवाई होने के बाद मुखिया पदधारियों से परामर्श के बाद सर्वसम्मति से फैसला देता है। अपराध या दोष के अनुसार सजा दी जाती है, जो सख्त मामलों में सामाजिक बहिष्कार से लेकर आम मामलों में सामान्य जुर्माना हो सकता है। ग्राम सभा के स्तर पर फैसला नहीं होने पर विवाद को इससे आगे उच्चतर यानी अंतरग्राम परिषद या पंचायत में भेज दिया जाता है, जैसे संतालों में देसमांझी, हो में मानकी, मुंडाओं व उरांव में पड़हा राजा आदि जो अंतिम निर्णय देते हैं। संतालों में अपील की अंतिम अदालत 'लॉ–बीर' होती है, जिसको संतालों में बहुत सम्मान प्राप्त है।

ग्रामसभा की कार्यवाहियों का दस्तावेजीकरण/डॉक्यूमेंटेशनः पारंपरिक स्वशासी व्यवस्थाओं की अधिकतर कार्यवाहियां लिखी नहीं जाती है लेकिन वर्तमान की ग्रामसभा में कार्यवाही व निर्णय लिखे जाते हैं। निर्णय सर्वसम्मति से और सभी की भागीदारी से होता है, ऐसे में मौखिक रिकार्ड को समुदाय में ज्यादा महत्वपूर्ण माना जाता रहा है। जुर्माना तुरंत वसूला जाता है और इसे जल्द ही गांव के काम या सामूहिक भोज आदि में खर्च कर दिया जाता है। इसलिए इसका कोई एकांउट या रसीद संग्रह कर रखने की कोई परंपरा नहीं होती। हालांकि 1996 की लामबंदी के बाद से ग्राम सभाओं में रजिस्टर में सबकुछ दर्ज किये जा रहे हैं।

चंदा/अंशदान या मदद : सामुदायिक अंशदान दो प्रकार के हैं : एक समुदाय के रीति–रिवाजों व पूजा आदि के लिए, जिसे समुदाय की बैठक के दौरान तय किया जाता है। जबकि दूसरा अंशदान विवाह या मृत्यु आदि के खास अवसरों पर नकद या सामग्री के जरिये जुटाया जाता है। समुदाय के हरेक परिवार से अनाज या नकद लेकर काम चलाया जाता है। इसी तरह

कमजोर या जरूरतमंदों को भी आर्थिक या संसाधनगत मदद दी जाती है, जैसे किसी के घर की मरम्मत, विधवाओं आदि के छोटे बच्चों या असहाय बूढ़े की देखरेख।

कृषि में 'मदइत' यानी सामूहिक मदद : पारंपरिक आदिवासी समाजों में सामुदायिक मदद यानी 'मदइत' की प्रथा कृषि से जुड़ी है। विभिन्न समुदायों में नाम अलग हो सकते हैं। लेकिन उद्देश्य मदद करना ही है। गर्मियों में बांध की मरम्मत, सामुदायिक तालाब को दुरूस्त करना, बिचड़े रोपना, खेती करना, फसल की देखरेख आदि बिना किसी वेतन या आर्थिक अदायगी के मदद के रूप में की जाती है। इसके बदले काम करने वालों को हंड़िया व चावल आदि दिया जाता है। हालांकि नकद के प्रचलन के कारण अब यह प्रथा खत्म हो रही है। मदद की जगह पैसों के पेमेंट आदि ने ले ली है। हालांकि ग्राम सभाएं पहले की तरह मजदूरी का निर्धारण, वनोपज का बंटवारा, चरागाह व जलावन की मात्रा तय करने के काम कर रही हैं। वनोपज जैसे फल, कंदमूल आदि छोटे समूहों में इकट्ठा कर बराबर बांटे जाते हैं। सामूहिक शिकार की प्रथा अब भी संताल आदि कुछेक आदिवासी समुदायों, खासकर गांव व जंगल से सटे देहातों में जैसे–तैसे जीवित है। सामूहिक शिकार का दिन तय होने पर शिकार किये गये पशुओं/पक्षियों आदि को सबको समान रूप से बांटा जाता है।

पारंपरिक प्रणाली और आधुनिक प्रणाली में भागीदारी : पारंपरिक व्यवस्था प्राकृतिक, स्वैच्छिक और स्वतःस्फूर्त है, जबकि आधुनिक प्रणाली सतही व बाहर से थोपी हुई है। सदियों से आदिवासियों ने एक तरह से कुछ मूल्य–संस्कार, सजा व ईनाम जैसे प्रावधान तैयार किये हैं, ताकि सबकी भागीदारी हो। बाहरी दुनिया के साथ संपर्क के कारण पुरातन व्यवस्थाएं व चीजें आभा खो रही हैं। आदिवासी बहुल देहात इलाकों में पारंपरिकता व भागीदारी ज्यादा बेहतर है, वहीं शहरी तथा कस्बाई क्षेत्रों से सटे इलाकों में ये कुछ हद तक हैं, पर इनमें बाहरी चीजों का घालमेल हो गया है। लेकिन एक बात तय है कि आज भी पारंपरिक व्यवस्थाएं आधुनिक समाजों को कई बातें सिखाने में सक्षम हैं।

पारंपरिक प्रणाली और आधुनिक प्रणाली में भागीदारी

क्रम संख्या	पारंपरिक शासन प्रणाली	आधुनिक प्रणाली
एक	भागीदारी सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक व आर्थिक मूल्य प्रणाली में अंतर्निहित है।	भागीदारी केवल बाहरी प्रणाली भर है।
दो	यहां भागीदारी स्वैच्छिक, प्राकृतिक और स्वतःस्फूर्त किस्म की है।	यहां भागीदारी मतलबी और सतही किस्म की है, चाहे वह संस्थागत आधारित हो या फिर विकास योजना पर टिकी।
तीन	भागीदारी सामुदायिक आधारित है, जहां एक खास परिवार सीधे तौर पर संबंधित या जिम्मेवार है।	यहां भागीदारी या तो लाभुक केंद्रित या फिर परिवारों के समूह पर आधारित है।
चार	शासन में भागीदारी प्रत्यक्ष व आमने– सामने प्रकृति की होती है।	यह अप्रत्यक्ष व प्रतिनिधित्वमूलक है।
पांच	भागीदारी लोगों के जीवन के सभी पहलुओं से संबंधित होती है।	यह केवल परियोजना केंद्रित है।
छह	भागीदारी सहभागिता व सहयोगपूर्ण है।	यह केवल प्रतिस्पर्द्धात्मक उपाय का एक भाग है।

सात	भागीदारी मनोरंजन, आमोद–प्रमोद, समुदायिक पर्व के नृत्य व गीतों के जरिये हेती है।	

पारंपरिक स्वशासन के विविध पहलुओं पर लोगों की धारणाएं : आदिवासी लोगों की राय पारंपरिक स्वशासन के बारे में गैर–आदिवासियों से ज्यादा सकारात्मक व बेहतर है। अधिसंख्य आदिवासी नेता और इससे थोड़ा अधिक आम आदिवासी लोग पारंपरिक स्वशासन की बैठकों से बेहद संतुष्ट दीखते हैं। लेकिन गैर आदिवासियों में कम ही लोग ऐसी राय रखते हैं।

नयी पंचायती व्यवस्था में भागीदारी, स्वैच्छिक या अनिवार्य, दोनों : वैसे तो चुनाव से लेकर नये किस्म की आर्थिक गतिविधियों में भागीदारी स्वैच्छिक व स्वतःस्फूर्त है। लेकिन गांवों में ग्रामसभाओं के लिए कुछ वैधानिक प्रावधान हैं। इसलिए लोगों के कल्याणार्थ कई सामाजिक व आर्थिक योजनाओं, जैसे गरीबी रेखा सूची का निर्धारण, अंत्योदय योजना के लाभुकों की पहचान, आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं की नियुक्ति, ग्राम स्तर पर शिक्षा व स्वास्थ्य समिति के सदस्यों का चुनाव आदि के लिए ग्राम सभा को कानूनी दायित्व निभाने पड़ रहे हैं।

हाल के वर्षों में सरकार को अपने रवैये में यह बदलाव लाना पड़ा है, क्योंकि उसने महसूस किया है कि अत्यधिक दबाव या बाहरी हस्तक्षेप से चल रही परियोजनाओं में विफलताएं सामने आ रही हैं। इसलिए ग्राम सभा की भूमिका निर्णायक हो रही है। मनरेगा जैसे कार्यक्रम में ग्राम सभा की भागीदारी अनिवार्य है, निगरानी से लेकर सोशल ऑडिट कराने तक। कई इलाकों में माइनिंग लीज से लेकर उद्योग स्थापना आदि में भी जनसुनवाई के बाद ग्राम सभा की संबंधित समिति की राय अत्यंत महत्वपूर्ण है। बीपीएल, अंत्योदय योजना के लाभुकों से लेकर पारा टीचर, ग्राम शिक्षा व स्वास्थ्य, वन समिति में सदस्यों का चुनाव व नियुक्ति भी ग्राम सभा के महत्व को दर्शाता है।

नयी पंचायती राज प्रणाली के मौजूद नहीं होने पर अनुसूचित इलाकों में पारंपरिक नेताओं की मदद से बैठकें होती थीं। बैठक की अध्यक्षता ग्राम प्रधान करते थे और सबको सूचित किया जाता था। हालांकि ये शिकायतें भी आयीं हैं कि ग्रामीणों को कुछ भी पता नहीं होता था और ग्राम स्तर पर ऐसी मीटिंग में बिचौलिये या ठेकेदार शामिल हो जाते थे। इसलिए ग्रामीणों की भागीदारी कम होती थी। कई मामलों में यह भी देखा गया है कि जाली हस्ताक्षर लगाये गये, और रजिस्टर या बही–खाते नहीं रखे गये। कहीं रखे भी गये तो संकल्प व प्रस्ताव विधिवत रिकार्ड के रूप में रखने के बजाय सादे पेपर पर लिखे गये। यह भी देखा गया है कि ग्राम सभा स्तर पर तीन तरह की बैठकें हुईं हैं। पहली मीटिंग सरकारी अधिकारियों की, दूसरी, पारंपरिक प्रणाली के तहत सांस्कृतिक उद्देश्य, पूजा–पाठ या शिकार आदि के लिए तथा तीसरे तरह की मीटिंग एनजीओ आदि गैरसरकारी संगठनों द्वारा किसी कार्यक्रम या हस्तक्षेप आदि के लिए बुलायी गयी बैठक। पंचायती राज प्रणाली के अभाव में अनिश्चय, भ्रम व उहापोह की स्थिति थी। शिकायत निपटारे आदि की कोई पुख्ता व्यवस्था नहीं थी। अधिसंख्य पारंपरिक नेता किसी न किसी तरह मनरेगा से जुड़े हुए हैं।

बीडीओ व मेसो अफसरों के साथ कामकाज की स्थिति: विभिन्न क्षेत्रों में पदस्थापित प्रखंड विकास पदाधिकारियों/बीडीओ तथा मेसो पदाधिकारी प्राय: दावा करते हैं कि सरकारी कार्यक्रमों को अंतिम रूप देने से पहले वे लोगों से परामर्श आदि करते हैं। हालांकि सलाह–मशविरा का कोई स्थापित पैटर्न नहीं दिखाई देता है। दरअसल होता यह है कि यदि कहीं पारंपरिक नेता दबदबे वाला या लोकप्रिय दिखा, तो उससे राय–सलाह ली जाती है। या फिर कोई यदि पहले की पंचायत में मुखिया पद पर रहा हो, उससे भी संबंध स्थापित किया जा सकता है, साथ ही राजनीतिक पार्टियों के स्थानीय नेताओं से भी संपर्क करना आम बात है। सरकारी अधिकारी कहते हैं कि उन्होंने लगभग सभी विकास कार्यों में नेताओं से संपर्क किया। लेकिन वे यह भी स्वीकार

करते हैं कि ग्राम सभा से संपर्क या सलाह–मशविरा शायद ही किया गया।

पारंपरिक स्वशासी व्यवस्था को संपर्क हेतु नहीं शामिल करने के पीछे सरकारी अधिकारियों के कई तर्क हो सकते हैं या होते हैं। यह कहा जाता है कि पारंपरिक स्वशासी नेता कई विकास मामलों में रूचि नहीं लेते हैं। कई गांवों, खासकर जहां आदिवासी व गैर–आदिवासियों की मिश्रित जनसंख्या है, में देखा गया है कि सामाजिक व धार्मिक उद्देश्यों के अतिरिक्त पारंपरिक स्वशासी नेताओं का प्रभाव घटा है। कई जगहों पर स्थिति यह भी है कि पारंपरिक नेता बेहद बूढ़े व अशिक्षित हैं। इसलिए गांव में नेतृत्व युवाओं के हाथों में है और वे ही सरकारी योजनाओं के लिए संपर्क करते हैं। यह भी कारण सामने है कि इस तरह का सलाह–मशविरा, विचारों का आदान–प्रदान अनिवार्य नहीं है। अधिकारी निर्वाचित मुखिया या पंचायत समितियों पर निर्भर करते हैं। सरकारी पंचायत प्रणाली के कारण पारंपरिक स्वशासन प्रणाली का महत्व धुंधला हो गया है। यह पता करना मुश्किल है कि यह किसी पारंपरिक स्वशासी नेता की वजह से या मुखिया के कारण है। प्रखंड स्तर के अधिकारी मानते हैं कि क्षेत्र में सक्रिय बिचौलियों, छुटभैये नेताओं व ठेकेदारों ने दबाव समूह के रूप में सक्रियता प्राप्त कर ली है, जिन्हें विविध योजनाओं व कार्यक्रमों में समायोजित करना पड़ता है।

कई जगहों पर यह भी देखा गया है कि पारंपरिक नेता अपने प्रभाव व रसूख की बदौलत किसी योजना या कार्यक्रम से ज्यादा लाभ कमाने में समर्थ होते हैं। जैसे किसी एक गांव में सार्वजनिक वितरण प्रणाली गांव के मुखिया के द्वारा संचालित हो रही है। दूसरे गांव में मधुमक्खी पालन, ट्रैक्टर, पंप सेट, कुंआ खुदवाने जैसे लाभ मुखिया ने अपने लाभ के लिए करा लिये हैं। सरकारी योजनाओं से गैरजरूरी लाभ उठाने की प्रवृत्ति केवल किसी पारंपरिक नेता के मत्थे नहीं डाला जा सकता, बल्कि यहां यह बात महत्वपूर्ण है कि वहां जो सक्रिय है या रसूखवाला है, वह अनैतिक फायदा उठाने से नहीं चूकता है।

पेसा के क्रियान्यवन में बाधाएं तथा नयी पंचायती प्रणाली से उम्मीदें

मोटे तौर पर झारखंड में पेसा कानून को सही अर्थों में जमीन पर उतारने में मुश्किलों के पीछे राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी, प्रशासन का सीधे या अप्रत्यक्ष रूप से अनिच्छा दर्शाना और राज्य में कॉरपोरेट ताकतों की मौजूदगी जैसे कारक जिम्मेवार हैं। इन्हीं समस्याओं के कारण पेसा के मद्देनजर अन्य कानूनों में जरूरी संशोधन नहीं हो पा रहे हैं। निचले स्तर पर समुदायों में पेसा के महत्व को लेकर जागरूकता की कमी और गांव–देहातों में स्थानीय ठेकेदारों, बिचौलियों तथा सरकारी अधिकारियों का भ्रष्ट गंठजोड़ है।

राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव : देखा जाये तो पेसा कानून के बनने के समय से ही प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से विरोध आदि के स्वर सामने आने लगे थे। संसद में इस कानून के पारित होने के तरीके को लेकर नाखुश होनेवाले लोगों की कमी नहीं थी। कुछ इसी तरह झारखंड पंचायत अधिनियम भी जल्दबाजी में बिना व्यापक विमर्श किये पास कर दिया गया। आम तौर पर पेसा के कारण मजबूत गैरआदिवासी समूहों के एक बड़े तबके से वोट नहीं मिल पाने का भय, निर्वाचित विधायकों–सांसदों द्वारा अपनी सीटें आरक्षित होने के बाद गंवाने के डर से भी विरोध की जमीन तैयार हुई है। झारखंड बनने के पहले पेसा से संबंधित हिचकिचाहटों के बीच थोड़े रेगुलेशन पास किये गये, जिससे ज्यादा लाभ नहीं हुआ। तब भी और राज्य बनने के बाद भूरिया कमिटी की रिपोर्ट और पेसा कानून पर सख्ती के निर्देश के कारण सदानों, खासकर अपने को आदिवासी जतानेवाले कुड़मी महतो समुदाय, द्वारा विरोध किया गया। उधर आदिवासी समुदायों ने भी पेसा कानून को अपने पारंपरिक अधिकारों के मुकाबले कमजोर माना है, और उनके दबाव से स्थिति अनिश्चय व तनाव की बनी हुई है। सरकार मामले को लटकाए रखने और सुप्रीम कोर्ट के पास भेजने में भी रूचि दिखाती रही। सुप्रीम कोर्ट के नये आदेश के बाद भी स्थिति में कोई खास फर्क नहीं आया है।

प्रशासन की अनिच्छा : नौकरशाही की तरफ से संवदेनहीनता और अनिच्छा दिखती रही है। राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव में प्रशासन की बेरूखी स्वाभाविक है। राज्य में अब तक अस्थिर सरकारों का दौर रहा है तथा अनुभवहीन नेता बेहद अनुभवी, परिपक्व व चालाक नौकरशाहों को संभालने में नाकाम रहे हैं। यह दरअसल विरासत की देन है। अविभाजित बिहार में झारखंड के नेताओं को पनपने ही नहीं दिया गया। एकाध विधायकों को ही मंत्रिपद का अनुभव मिला, जिसका नतीजा झारखंड में दूरदर्शी, अनुभवी व प्रशासनिक क्षमता से लैस मंत्रियों की कमी के रूप में दिखता रहा है। दूसरी ओर सरकार व आला प्रशासनिक अधिकारी निचले स्तर पर विकास कार्यक्रम व योजनाओं से जुड़े सत्ता के विकेंद्रीकरण को लेकर अनिच्छुक रहे हैं, क्योंकि निचले स्तर का प्रशासनिक तबका व ताकत उनके बजाय पंचायतों को मिल जाता है। सरकारी अधिकारी तो ग्राम सभा में उन लोगों को शामिल करने के इच्छुक रहे हैं, जो उनके अनुकूल हों। इसी सोच के तहत समुदायों की सहमति लेने व परामर्श करने के बजाय उन्हें नजरअंदाज करने की प्रवृत्ति रही है।

माइनिंग, औद्योगीकरण, कॉरपोरेट सत्ता और पेसा कानून : ऐतिहासिक रूप से आजादी पूर्व व बाद के दिनों में झारखंड में एक लंबी प्रक्रिया के तहत खनन व उद्योग की नीति चली। इससे पैदा जमीन से अलगाव या बेदखली, पर्यावरण का नाश, माइनिंग व उद्योगों से बेहद कम लाभ के संकट ने प्रतिरोध आंदोलनों को तीव्र किया। यह जानी-मानी बात है कि भूरिया कमिटी के ग्राम सभा की 'सहमति' के बदले पेसा कानून में 'परामर्श/सलाह' शब्द जोड़ दिया गया। झारखंड पंचायत अधिनियम में पुनर्वास आदि के मसलों पर तो इसका जिक्र तक नहीं है। राज्य बनने के बाद सैकड़ों की संख्या में उद्योग लगाने व खनन करने के लिए एमओयू यानी सहमति पत्र तैयार किये गये। पुराने उद्योग समूह टाटा से लेकर ब्रिटेन के आर्सेलर मित्तल, फिर देशी कंपनियों जिंदल, भूषण, आधुनिक, एस्सार आदि ने बिजली, स्पंज आयरन,

एलुमिना, बॉक्साइट, यूरेनियम, कोयला आदि से जुड़े उद्योग व खनन आदि के लिए सरकार से समझौता किया। इन सबका नतीजा यह है कि जमीन की मारामारी मची है, जिसमें निजी कंपनी से लेकर सरकारी उपक्रम दावेदार हैं। कॉरपोरेट कंपनियां ग्राम सभाओं पर सीधे या लालच देकर दबाव डाल रही हैं, ताकि जमीन, पानी आदि लिया जा सके। जंगल काटा जा सके। इसके तहत कहीं पेसा को दरकिनार कर ग्राम सभा को पीछे कर गांव के प्रमुख पारंपरिक नेताओं से मिलीभगत की जा रही है। निजी कंपनियां तो सरकारी कानूनों की परवाह तक नहीं कर रहीं। जनसुनवाई में सही सूचनाएं नहीं देकर बरगलाया जाना, पारंपरिक नेताओं को घूस, नौकरी, मकान, गाड़ी आदि का लालच देना आदि अनेक तरीकों से सहमति या असहमति के बीच जमीन हथियाए जा रहे हैं। कई मौकों पर लालची पारंपरिक नेताओं की करनी की सजा उनके समुदाय ने उनको दी है। कॉरपोरेट कंपनियां पुनर्वास नीति तक को ठेंगा दिखाती रही हैं।

एमओयू, पेसा कानून और जनता : एमओयू यानी समझौतापत्र सरकार व उद्योगपतियों के बीच किया गया है। चूंकि राज्य यानी सरकार अपने को 'एमीनेंट डोमेन' यानी वरीय व अंतिम मानती है, जबकि उसे एक पब्लिक ट्रस्टी के रूप काम करना होता है। बेशक जनहित में वह बतौर पब्लिक ट्रस्टी एमओयू कर सकती है, लेकिन लोगों को इससे संबंधित हितलाभ व हानियों का पता होना चाहिए, उन्हें सूचित किया जाना चाहिए, उनकी तरफ से जांच होनी चाहिए, तभी कुछ तय होना चाहिए। लेकिन लोगों को यह अधिकार नहीं दिया गया। इस पर राज्य विधायिका में भी ढंग से बहस व चर्चा नहीं हुई। एमओयू में इस बात का जिक्र ही नहीं है कि जहां उद्योग लगना प्रस्तावित है, वहां के निवासियों से सलाह-मशविरा किया जाना है या सहमति ली जानी है या नहीं! यह अनुसूचित क्षेत्रों में पेसा कानून के उल्लंघन का मामला है, क्योंकि ग्राम सभा से परामर्श अनिवार्य है।

पंचायती राज प्रणाली से लोगों की उम्मीदें

पंचायती राज प्रणाली से उम्मीद पर लोगों की मिश्रित प्रतिक्रियाएं हैं। अधिसख्य पारंपरिक नेताओं को उम्मीद है कि सत्ता के विकेंद्रीकरण से विकास की गति बेहतर होगी। हालांकि आदिवासी पारंपरिक नेता विकास के मायने को लेकर एकमत नहीं हैं। किसी के अनुसार सड़क, पेयजल, तो किसी के लिए सामाजिक योजनाएं तथा कुछ बेहतर स्कूल, सिंचाई आदि को विकास के रूप में गिनते हैं।

कुछ निर्वाचित जनप्रतिनिधि गांवों में सड़क बिजली की स्थिति बेहतर करना चाहते हैं। जबकि बहुत कम प्रतिनिधि सिंचाई, रोजगार व पेयजल की उपलब्धता को प्राथमिकता देने की बात करते हैं। लेकिन बीपीएल कार्ड देने की बात वे अवश्य करते हैं। निर्वाचित प्रतिनिधि खुद के काम के मानदेय के प्रति सचेत रहते हैं लेकिन साथ ही अपने अधिकारों के तहत सांसद व विधायक कोष की तरह अपने लिए भी ऐसे किसी फंड की उम्मीद रखते हैं। कई प्रतिनिधि चुनाव में जीत से पहले किये गये खर्च की वापसी को लेकर भी कुछ लाभ पाने की प्रत्याशा में हैं, हालांकि वे खुले तौर पर ऐसा कहने से बचते हैं। निश्चय ही ऐसे प्रतिनिधियों के भ्रष्ट आचरण में लिप्त रहने का अंदेशा है। निर्वाचित प्रतिनिधियों का बहुमत अपना मानदेय चाहते हैं, कई मुखिया बॉडीगार्ड और गाड़ी रखना चाहते हैं, कुछ इंदिरा आवास योजना अपने बूते बांटने की मांग रखते हैं।

आम लोगों की उम्मीदें : प्रतिनिधियों से आम लोगों की उम्मीदें व आशाएं बेहिसाब हैं। वे अपना काम जल्द करवाने की मंशा रखते हैं। वृद्धावस्था पेंशन, इंदिरा आवास, राशन कार्ड, खासकर लाल यानी बीपीएल कार्ड, कुंआ खुदवाना, मनरेगा में काम, समय पर भुगतान आदि से जुड़ी आशाएं जनता के मन में गहराई तक समायी हैं। लोग चाहते हैं कि सड़क बने, या सुधर जाये। साथ ही आय, जाति, निवास प्रमाण पत्र सुगम व जल्द बने, यही उनकी इच्छा है।

पारंपरिक स्वशासन प्रणाली और पंचायती राज संस्थाओं में सामंजस्य

एक सवाल बराबर पूछा जाता रहा है कि आधुनिक प्रशासन की पंचायती राज संस्थाओं तथा पुरानी पारंपरिक स्वशासी व्यवस्था में कैसे तालमेल बिठाया जाय! अदालतों में दलील दी जाती रही है कि अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायती राज संस्थाओं से संबंधित चुनाव नहीं किये जाएं, क्योंकि यह गैरसंवैधानिक है। पेसा कानून में इन दोनों प्रणालियों को मिलाने की कोशिश हुई है। झारखंड पंचायती राज अधिनियम ने भी थोड़ा कुछ इसके लिए किया है। जैसे प्राकृतिक बसाहट या निवास के रूप में ग्राम सभा को पहचानना तथा विवादों के निपटारे में पारंपरिक तरीकों को मान्यता देना। हालांकि झारखंड पंचायती राज अधिनियम में यह अनिवार्य है कि पारंपरिक प्रधान अनुसूचित क्षेत्र में ग्राम सभा की अध्यक्षता करेंगे।

यह जानना महत्वपूर्ण है कि वर्तमान में पारंपरिक व्यवस्था तथा पंचायती व्यवस्था के बीच समन्वय को पारंपरिक नेता एक समस्या के रूप में देखते हैं। लेकिन गैरआदिवासियों की नजर में यह समस्या नहीं थी। यानी पारंपरिक नेता इस मसले पर ज्यादा आशंकित हैं कि समन्वय किस प्रकार होगा और उनके हित में होगा भी या नहीं! कुछ पारंपरिक नेता यह स्वीकार करते हैं कि उन्हें सरकार की तरफ से मानदेय मिलता है और नयी पंचायती राज प्रणाली से शायद यह लाभ उनसे छिन जाये। साथ ही अब तक सरकारी मौकों पर या विकास कार्यक्रमों में मिलते आ रहे महत्व के भी छिन जाने के प्रति वे आशंकित दिखते हैं। एनजीओ भी अपने कार्यों के लिए इन्हें ही लक्षित करके चलते रहे हैं। हालांकि कई पारंपरिक नेताओं का कहना है कि उन्हें कोई समस्या नहीं है, क्योंकि वे क्षेत्र में सामाजिक समरसता, सांस्कृतिक कार्य व शांति बहाली आदि के काम से जुड़े हैं जबकि पंचायती संस्थाएं सरकारी पैसों के जरिये विकास के कार्य करती है।

सामंजस्य या तालमेल से जुड़े मुद्दे व चिंताएं

आदिवासी व गैर आदिवासियों के मन में इससे संबंधित कुछ चिंताएं हैं, जो इस प्रकार हैं :-

1. प्राकृतिक निवास के सीमांकन को लेकर लोगों में सहजता नहीं है। भारत जन आंदोलन द्वारा लामबंदी की एक प्रक्रिया के दौरान ढेरों आवेदन आये, लेकिन उन्हें नजरअंदाज कर दिया गया। पेसा के प्रावधानों के तहत गंभीरता से कुछ नहीं किया गया, जैसे न तो कोई विशेष मीटिंग हुई, न कोई आयोग बना, ताकि ग्राम पंचायत तथा पुरानी ग्राम सभा के सीमा का निर्धारण किया जा सके। यह समस्या पेसा की मूल भावना को धूमिल करनेवाली हो सकती है। पेसा के तहत निवास की बुनियादी इकाई की पहचान व स्थापना बेहद अनिवार्य है।
2. एक आशंका ग्राम सभा में बसाहट के मामले पर है कि यदि कुछ निर्णय लिये गये तो क्या पंचायत स्तर पर ग्राम सभा इसे स्वीकार करेगी और अगर इनकार कर दिया गया तो समाधान के लिए क्या किया जाएगा?
3. पंचायतों व लोगों का बंटवारा आबादी के आधार पर किया गया है, ताकि दो पारंपरिक स्वशासी व्यवस्था तथा पंचायत का भौगोलिक क्षेत्र न टकराए। पर इससे भ्रम व उलझन पैदा हो सकते हैं। अगर एक पंचायत में दो या इससे अधिक पारंपरिक व्यवस्था मौजूद हो तो ग्राम सभा की बैठक में अध्यक्षता कौन करेगा, यह स्पष्ट नहीं है। इसके अलावा विविध आदिवासी समूह वाले इलाके जैसे संतालों व भूमिजों के निवास वाले गांव में उनके अपने प्रधान व अपनी व्यवस्था होगी, फिर कैसे गांव की समस्या का निवारण होगा?
4. वैसे इलाके जहां छोटे व कमजोर आदिवासी समुदाय, जैसे सबर, रहते हों, वहां यह आशंका पैदा हो सकती है कि उन्हें प्रतिनिधित्व का अवसर नहीं मिलेगा, और न उनकी आवाज सुनी जायेगी। कम संख्या के कारण उनके चुने जाने की संभावना नहीं बनती है।

5. झारखंड पंचायत राज अधिनियम–2001 में पारंपरिक स्वशासन व्यवस्था के अंतरग्राम संगठनों को शासन के उच्चतर इकाइयों के साथ एकीकृत करने की कोशिश नहीं की गयी है। जबकि संताल परगना व कोल्हान इलाकों में अंतरग्राम पंचायत बेहद सक्रिय रहे हैं। अस्सी के दशक के मध्य में बड़े स्तर पर राजनीतिक जागरूकता व पुनरूत्थान देखा गया है।
6. कई इलाकों में गैरआदिवासी असंतुष्ट रहे हैं कि वे अध्यक्ष नहीं बन पा रहे तथा ग्राम सभा स्तर पर प्रधान नहीं बनते। यह असंतोष गैरआदिवासी इलाकों में खासकर देखा गया है।

इस तरह देखा जा सकता है कि पेसा के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए समुदाय के भीतर व बाहर व्याप्त समस्याओं का निदान करना जरूरी है। राजनीतिक प्रक्रिया, कॉरपोरेट शक्तियां और नौकरशाही पेसा के लिए बाधाएं खड़ी करते रहे हैं, वहीं जानकारी का अभाव भी बड़ी परेशानी है। पेसा के बेहतर क्रियान्वयन के लिए व्यापक लामबंदी और इसके प्रति ज्ञान का प्रसार अनुसूचित क्षेत्रों में अनिवार्य है। ❐

संवाद : एक परिचय

'संवाद' ट्रस्ट रजिस्ट्रेशन एक्ट 1882 के अंतर्गत निबंधित है। इसका निबंधन दिनांक 21 मार्च 2001 को रांची में हुआ है।

संवाद का उद्देश्य

- समतावादी और न्यायमूलक समाज की स्थापना के लिए विभिन्न जनसंगठनों, समूहों, संस्थाओं एवं व्यक्तियों को संगठित करना तथा इनके बीच समन्वय स्थापित करना।
- समता, लैंगिक समानता, स्वतंत्रता, न्यायमूलक तथा भाईचारा व बहनापा की स्थापना हेतु लोगों को जागरूक करना।
- शोषण, अन्याय, अत्याचार से मुक्त समाज की स्थापना करना तथा देशज सांस्कृतिक अस्मिता को स्थापित करना।
- परंपरागत पद्धति को बिना छेड़े सामाजिक–आर्थिक तथा पर्यावरणीय तंत्र को विकसित करना। इसके लिए सामाजिक कार्यकर्ता, वैज्ञानिक, इंजीनियर, बुद्धिजीवी तथा कलाकार की तलाश करना तथा इनके विचारों एवं अनुभवों को जनता के साथ आदान–प्रदान करना।
- सतत् विकास तथा देशज सांस्कृतिक अवधारणा को ग्राम स्तर तक ले जाना।
- महिला, आदिवासी, दलित तथा अल्पसंख्यकों के बीच सामाजिक एवं आर्थिक विकास करना।
- आदिवासी जीवन पद्धति के सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण, संवर्द्धन करना। इसके लिए अध्ययन एवं शोध कार्य करना।
- सेकुलर समाज की स्थापना के लिए पहल करना।
- चेतना निर्माण के लिए शिक्षण–प्रशिक्षण एवं संसाधन केंद्र की स्थापना करना।
- अध्ययन एवं शोध केंद्र, पुस्तकालय, दस्तावेज केंद्र, संग्रहालय, दृश्य श्रव्य केंद्र की स्थापना करना।
- स्थानीय तथा क्षेत्रीय इतिहास, संस्कृति, लोककला तथा दस्तकारी का दस्तावेजीकरण एवं संरक्षण।
- पूर्ण अलाभकारी तथा सेकुलर संस्थाओं को विकसित करना।

वर्तमान कार्यक्षेत्र

झारखंड एवं बिहार

वर्तमान कार्यक्रम एवं गतिविधियां

- स्वशासन एवं पंचायती राज
- ग्रीन इनर्जी एवं जलवायु परिवर्तन
- बाल अधिकार
- परंपरागत आदिवासी कला एवं संस्कृति पर शोध एवं अध्ययन
- कृषि एवं सतत् आजीविका
- महिला सशक्तिकरण
- अध्ययन, शोध एवं प्रकाशन
- फिल्म एवं संचार सामग्री निर्माण